डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का नाम आज जैन समाज के उच्चकोटि के विद्वानों में अग्रणीय है।

ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी वि.सं. 1992 तदनुसार शनिवार, दिनांक 25 मई, 1935 को ललितपुर (उ.प्र.) जिले के बरौदास्वामी ग्राम के एक धार्मिक जैन परिवार में जन्में डॉ. भारिल्ल शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न तथा एम. ए. पी-एच. डी. हैं। समाज द्वारा विद्यावाचस्पति वाणीविभूषण, जैनरत्न आदि अनेक उपाधियों से समय-समय पर आपको विभूषित किया गया है।

सरल, सुबोध, तर्कसंगत एवं आर्कषक शैली के प्रवचनकार डॉ. भारिल्ल आज सर्वाधिक लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उन्हें सुनने देश-विदेश में हजारों श्रोता निरन्तर उत्सुक रहते हैं। आध्यात्मिक जगत में ऐसा कोई घर न होगा, जहाँ प्रतिदिन आपके प्रवचनों के कैसिट न सुने जाते हों तथा आपका साहित्य उपलब्ध न हो। धर्म प्रचारार्थ आप अनेक बार विदेश यात्रायें भी कर चुके हैं।

जैन-जगत में सर्वाधिक पढ़े जाने वाले डॉ. भारिल्ल ने अब तक छोटी-बड़ी 46 पुस्तकें लिखी हैं और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है, जिनकी सूची अन्दर प्रकाशित की गई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक आठ-भाषाओं में प्रकाशित आपकी कृतियाँ 36 लाख से भी अधिक की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी हैं।

सर्वाधिक बिक्री वाले जैन आध्यात्मिक मासिक वीतराग-विज्ञान हिन्दी तथा मराठी के आप सम्पादक हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की समस्त गतिविधियों के संचालन में आपका महत्वपूर्ण योगदान है।

रीति-नीति

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

डॉ. भारिल्ल द्वारा प्रतिपादित एकता के पाँच सूत्र

1. भूतकाल को भूल जाओ।
2. भविष्य के लिये कोई शर्त मत रखो।
3. वर्तमान में जो जहाँ है, वहीं रहकर अपना कार्य करे।
4. जिन पाँच प्रतिशत बातों के संबंध में असहमति है, उन्हें अचर्चित रहने दें और आलोचना-प्रत्यालोचना से दूर रहें।
5. जिन बातों में पूर्ण सहमति है, उनका मिलजुलकर या अलग-अलग रहकर, जैसे भी सम्भव हो, डटकर प्रचार-प्रसार करें।

(भगवान महावीर २६ सौ वाँ जन्म-जयन्ती वर्ष)

रीति-नीति

(डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के ग्रन्थों में से निकाले हुए बिन्दु)

लेखक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

सम्पादक :

ब्र. यशपाल जैन

एम.ए., जयपुर

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर - ३०२०१५

फोन : (०१४१) ५१५५८१, ५१५४५८

प्रथम दो संस्करण : १० हजार
(५ मई २००० से अद्यतन)
तृतीय संस्करण : ५ हजार
(१५ अगस्त २००१)
कुल योग : १५ हजार

मूल्य : तीन रुपये

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

११०० रुपये देनेवाले :
श्री हुलासमलजी कासलीवाल, कलकत्ता
श्रीमती क्षमाबाई गंगवाल, कलकत्ता
श्रीमती साधना पाण्डया, कलकत्ता
श्री सुशीलकुमारजी जैन, कलकत्ता

२५१ रुपये देनेवाले :
श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज
श्रीमती श्रीकान्ताबाई पूनमचन्दजी छाबड़ा, इन्दौर

१०१ रुपये देनेवाले :
श्री मोतीलालजी जैन, कोटा

कुल राशि : ५००३

लेजर टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स
ए-४, बापूनगर
जयपुर - ३०२०१५

मुद्रक :
सन एन सन क्रियेशन्स
तिलकनगर, जयपुर

प्रकाशकीय

'रीति-नीति' पढ़कर चौंकिए मत ? क्योंकि यह कोई दस्तावेज नहीं, अपितु जैनदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान डॉ॰ हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम कृति का नाम है।

रीति-नीति डॉ॰ भारिल्लजली की विविध कृतियों से चुने गए उन अंशों का संकलन है, जो समाज एवं व्यक्ति दोनों को एक नई दिशा एवं एक नया सोच देता है। आत्मकल्याण का मार्ग हो या तत्त्वप्रचार का; राजनीति की बात हो या समाज नीति की; यह कृति सभी को विपरीत परिस्थितियों में सार्थक दृष्टिकोण का बोध देगी।

विगत वर्षों में जब सामाजिक वातावरण अति विषाक्त था, स्थान-स्थान पर माँ जिनवाणी का घोर अपमान हो रहा था - ऐसे विषम वातावरण में आत्मार्थी समाज को डॉ॰ भारिल्ल की सूझ-बूझ एवं रीति-नीति ने ही सही दिशा दी। उनके मार्गदर्शन से ही विपरीत परिस्थितियों में तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ संचालित हो सकी हैं।

यह संक्रमण काल डॉ॰ भारिल्लजी ने स्वयं भोगा है और उस स्थिति से जिस रीति-नीति से निपटा है; वह डॉ॰ भारिल्लजी द्वारा सृजित साहित्य में अनायास ही समाविष्ट हो गई है। उनकी 19 कृतियों में से रीति-नीति परक अंशों को निकालकर उन्हें व्यवस्थित रूप से संजोकर इसे पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय ब्र॰ यशपालजी को है। जिस पुस्तक के अंश दिए गए हैं, उन्हें यथास्थान मुद्रित किया गया है। उन्होंने अपनी सोच से बिखरे मोती, सूक्ति-सुधा, बिन्दु में सिन्धु तथा मैं स्वयं भगवान हूँ जैसी उपयोगी कृतियां डॉ॰ भारिल्लजी के गूढ़ साहित्य से निकाल कर ही पाठकों के उपयोगार्थ प्रस्तुत की हैं।

अंत में प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने विषयानुरूप सुन्दर आवरण बनाने में तथा सम्पूर्ण प्रकाशन दायित्व का निर्वहन बखूबी किया है।

— नेमीचंद पाटनी, महामंत्री

संपादकीय

आज से 25 वर्ष पहले जब मैं बाहुबली कुंभोज (महाराष्ट्र) में रहता था, तब जैनपथ-प्रदर्शक के माध्यम से डॉ॰ भारिल्ल के कार्यकलाप और रीति-नीति का परिचय प्राप्त हुआ था; पर वह न के बराबर ही था। मुझे उसमें राजनीति की गंध भी आती थी।

जब आज से 21 वर्ष पहले उनसे तत्त्व सुनने की भावना से स्थाईरूप से टोडरमल समारक भवन जयपुर में आवास बनाया और डॉ॰ भारिल्ल के निकट संपर्क में आया तो लगा कि इनकी करनी और कथनी में कोई अंतर नहीं है।

मैंने उन्हें ज्यों-ज्यों अनेकप्रकार से परखा, त्यों-त्यों उनके प्रति मेरी आस्था दृढ़ होती गई। इनके साहित्य में जो रीति-नीति अभिव्यक्त हुई है, वह इनकी वास्तविक नीति है - रीति है।

मैंने उनके साहित्य का अध्ययन रीति-नीति के दृष्टिकोण से आरंभ किया तो मेरी दृष्टि में अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ। उनकी रीति-नीति मुझे स्पष्ट होते ही ऐसा लगा कि आत्मकल्याण एवं तत्त्व-प्रचार के लिए यदि कोई निरापद रास्ता है तो यही है।

अब मुझे अंदर से तीव्र भावना जागृत हुई कि रीति-नीति संबंधी सब वचनों को एक जगह एकत्रित कर प्रस्तुत किया जाय तो उनमें श्रद्धा रखनेवाली मुमुक्षु समाज को तो एक रास्ता मिलेगा ही, उनसे असहमत समाज भी सहमत हुए बिना नहीं रहेगी।

इसको यह रूप प्रदान करने में मुझे श्री राकेश शास्त्री नागपुर और श्री शांतिनाथ पाटील – एरंडोली-सांगली का विशेष परामर्श एवं सहयोग मिला है; एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

जो व्यक्ति इस कृति का गहराई से अध्ययन कर इसमें बताये रास्ते पर चलेगा, उसका यह जीवन तो सुख-शांति में बीतेगा ही परलोक भी सुधरेगा, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है।

– ब्र॰ यशपाल जैन

रीति-नीति

१. हमारा दृढ़ विश्वास है कि विवादों में उलझकर चित्त को कलुषित करते रहना मानव जीवन की सबसे बड़ी हार है और उनसे तटस्थ रहकर आत्महित और आत्महितकारी चिन्तन-मनन-अध्ययन, उपदेश, लेखन में संलग्न रहना ही जीवन है, जीवन की सबसे बड़ी जीत है।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १३१

२. ध्यान रहे हमारा यह बहुमूल्य मनुष्यभव न तो किसी पोपड़म के पोषण के लिए ही समर्पित हो सकता है और न इसे किसी की असीम महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बलिदान ही किया जा सकत्ता है।

हमारा यह बहुमूल्य जीवन तो आत्महित और जिनवाणी की सेवा में ही सम्पूर्णतः समर्पित है।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १३८

३. भाई, हम सबको मिलकर अज्ञान के विरुद्ध

लड़ना है, असंयम के विरुद्ध लड़ना है, दुराचार के विरुद्ध लड़ना है। जो भी धार्मिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोग हैं, उन्हें परस्पर में लड़ने के स्थान पर मिलकर अज्ञान से, अशिक्षा से लड़ना चाहिए। इसमें ही समाज का भला है, संस्थाओं का भला है, धर्म का भला है और व्यक्तियों का भी भला इसी में है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १४६

४. आज की दुनिया संघर्ष की नहीं, सहयोग की दुनिया है। जब एक देश दूसरे देश के विकास में तकनीकी, आर्थिक, बौद्धिक आदि सभी प्रकार का सहयोग करते देखे जाते हैं, तो क्या धर्म के क्षेत्र में यह संभव नहीं है?

यदि हमने समय को नहीं पहिचाना, युग की आवाज की अनसुनी कर दी तो समय हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।

जो युग की आवाज को, समय की पुकार को सुनता है, उसके अनुसार चलता है; समय उसका ही साथ देता है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १४७

५. विदेहक्षेत्र-गमन यह आचार्य कुन्दकुन्द की विशुद्ध व्यक्तिगत उपलब्धि थी। व्यक्तिगत उपलब्धियों का सामाजिक उपयोग न तो उचित ही

है और न आवश्यक ही। अतः वे उसका उल्लेख करके उसे भुनाना नहीं चाहते थे। विदेहगमन की घोषणा के आधार पर वे अपने को महान साबित नहीं करना चाहते थे। उनकी महानता उनके ज्ञान, श्रद्धान एवं आचरण के आधार पर ही प्रतिष्ठित है। यह भी एक कारण रहा है कि उन्होंने विदेहगमन की चर्चा तक नहीं की। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ६

६. सिद्धान्तशास्त्रों के गहन अध्येता का अभिनन्दन वास्तव में एक प्रकार से सिद्धान्तशास्त्रों का ही अभिनन्दन है।

यद्यपि सरस्वती के आराधकों, उपासकों, लाड़ले सपूतों को इन लौकिक अभिनन्दनों की आकांक्षा नहीं होती, होनी भी नहीं चाहिए; तथापि सरस्वती माता की प्रतिदिन वंदना करनेवाली जिनवाणी भक्त धर्मप्रेमी समाज को भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ६२

७. संस्थाओं की संभाल भी वे ही लोग कर सकते हैं, जो स्वयं तत्त्वाभ्यासी हों, स्वयं निरंतर स्वाध्याय करते रहे हों, तत्त्वरसिक हों और वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में जीवन समर्पित

करनेवाले हों, श्रद्धान के पक्के हों और किसी भी प्रकार के दबाव में आकर अपना मार्ग न बदलने वाले हों। – बिखरे मोती, पृष्ठ -- ६६

८. लोगों का विश्वास प्राप्त करना कोई आसान काम तो नहीं है, इसके लिए सहृदय होने के साथ-साथ सहृदय दिखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

वीतरागी तत्त्वज्ञान की यह निर्मलधारा निरंतर बहती रहे, दिन-दूनी, रात-चौगुनी बहती रहे; – यह बात हमारी मंगलकामनाओं तक ही सीमित न रहे; अपितु एक ऐतिहासिक सत्य बन जावे – इसके लिए समर्पित भाव से निरंतर प्रयत्नशील रहना हम सबका ऐतिहासिक दायित्व है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ७०

९. कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों को कार्य करने में क्या कठिनाई आ रही है? – यह जानना और उसका निराकरण करना भी प्रशासक का उत्तरदायित्व है। जबतक उस समस्या का उचित समाधान नहीं निकाला जायेगा, जिससे कार्य में रुकावट आ रही है, तबतक कार्य में सफलता मिलना सम्भव नहीं है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ७७

१०. कुछ लोगों की दृष्टि मात्र कमियाँ ही देख पाती हैं, उन्हें प्रत्येक कार्य में कुछ न कुछ खोट ही

नजर आती है। ऐसे लोग सदा असन्तुष्ट ही बने रहते हैं।

कुछ लोग मात्र अच्छाइयाँ ही देखते हैं, उन्हें कहीं कोई खराबी दिखाई ही नहीं देती है। ऐसे लोग भी समाज के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते; क्योंकि उनके संरक्षण में कभी-कभी बड़े-बड़े अपराध भी पनपते रहते हैं, पर उन्हें कुछ लगता ही नहीं। परिणामस्वरूप धर्म और धर्मायतन बदनाम हो जाते हैं।

ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, जो व्यक्तियों की अच्छाइयों और बुराइयों की जड़ तक पहुँचने की क्षमता रखते हैं, बुराइयों पर अंकुश लगाना जानते हैं, अच्छाइयों को प्रोत्साहित करना जानते हैं और निन्दा प्रशंसा से अप्रभावित रहकर व्यक्तियों को, मिशन को; संस्थाओं को अपने सुनिश्चित पथ पर अडिग रखते हैं, झंझावातो से बचाये रखते हैं, गलत लोगों से सुरक्षित रखते हैं एवं सन्मार्ग पर निरंतर गतिशील भी रखते हैं। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ७८

११. जिसमें मतभेद की कहीं कोई गुंजाइश नहीं है – ऐसे तत्त्वज्ञान पर विशेष जोर देना चाहिए, उसके ही प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति लगाना

चाहिए। जब लोगों में तत्त्वज्ञान की पकड़ होगी तो जहाँ जो सुधार अपेक्षित होगा स्वतः हो जायेगा।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – ८८

१२. हमारा समाज से आग्रहपूर्ण अनुरोध है कि वह समय रहते चेते, समय की गति को पहिचाने। यह युग संगठन का युग है। इसमें विघटनकारी तत्त्वों को कोई स्थान नहीं है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ६३

१३. गत वर्ष से दिगम्बर जैन समाज जिस वातावरण से गुजरा है, उसमें एक बात स्पष्टरूप से सामने आई है कि समाज का बहुभाग शान्ति चाहता है, शान्तिपूर्ण उपायों से ही अपनी संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत, तीर्थों एवं जीवन्त तीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा और समृद्धि करना चाहता है। सामाजिक विपन्नता और कुरीतियों को भी समाप्त कर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सुखी, शिक्षित, सदाचारी और सुनागरिक बनाना चाहता है।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – ६५

१४. बहिष्कार करने वालों को यह पता नहीं है कि युग कितना बदल गया है। बहिष्कार वाली बातें आज नहीं चल पावेंगी। कही दूसरों का बहिष्कार करने चलें और स्वयं ही बहिष्कृत न हो जावें। उन्हें

इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। वे लोग पहिले अपना आचरण तो देखें, अपने बच्चों का आचरण तो देखे; पहिले उनका ही बहिष्कार कर लें, तब दूसरों का बहिष्कार करने की सोचें।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – ६५

१५. आज तो समाज काफी जागृत हो गया है। आज के जागृत समाज को दो में से एक को चुनना है निर्माण या विध्वंस। हमें पूरा-पूरा विश्वास है कि आज का जागृत समाज निर्माण को चुनेगा, विध्वंस को नहीं।

समाज की शान्ति के खातिर, जिनधर्म की प्रभावना के खातिर इनसे सानुरोध आग्रह है कि एकबार अपने कृत्यों पर विचार करें, समाज के सर्वमान्य नेताओं की मार्मिक अपील पर हृदय से अमल करें। अनावश्यक गर्मजोशी में ऐसा कोई प्रयास न करें कि जो समाज को विघटन की ओर ले जावे। विध्वंस से विरत हो अपनी शक्ति और श्रम को निर्माण में लगावें। – बिखरे मोती, पृष्ठ – ६६

१६. महात्मा गांधी के दुर्भाग्यपूर्ण अन्त पर डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा था कि – "एक सब से बड़ा हिन्दू हिन्दुत्व की रक्षा के नाम पर एक हिन्दू

द्वारा ही मारा गया।'' कानजीस्वामी को गैरदिगम्बर घोषित करने की सोचवालों को एकबार गम्भीरता से सोचना चाहिए कि एक बार फिर किसी राधा-कृष्णन को यह न लिखना पड़े कि कुन्दकुन्दाचार्य के सबसे बड़े भक्त को कुन्दकुन्दाचार्य के तथाकथित भक्तों द्वारा कुन्दकुन्द की रक्षा के नाम पर गैरदिगम्बर घोषित किया गया।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – ६६

१७. एक प्रश्न समाज में यह भी जोरों से उठ रहा है कि क्यों नहीं इन कलहप्रिय तत्त्वों का समाज द्वारा बहिष्कार कर दिया जाता। पर मेरा शान्तिप्रिय समाज से आग्रह है कि ये अपनी करतूतों से स्वयं ही बहिष्कृत से हो गये हैं। इनका बहिष्कार करना मरे को मारना है। इस पाप से समाज विरत ही रहे, तो अच्छा है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १०६

१८. समाज के समझदार लोगों को यह एक संकेत है कि जो लोग इन तथाकथित विघटनवादी पण्डितों के चक्कर में आवेंगे, वे समाज का कोई भला नहीं करेंगे, बुरा भी नहीं कर पावेंगे; क्योंकि जागृत समाज बुरा कर पाने के पहिले ही उनसे मुक्त हो जावेगी। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १११

१९. हमारी नीति वाद-विवादों में उलझने की न कभी रही है और न रहेगी।– बिखरे मोती, पृष्ठ – १२२

२०. मनुष्यभव की सार्थकता और सफलता एकमात्र आत्मानुभूति की प्राप्ति में ही है। अतः यदि हमने गुरुदेवश्री जैसे आत्महितकारी अद्‌भुत निमित्त का थोड़ा भी सत्संग प्राप्त किया है तो जगत के प्रपंचों से दूर रहकर हमें आत्मानुभव प्राप्त कर उन जैसा पावन जीवन व्यतीत करना चाहिए।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १२४

२१. 'वीतराग--विज्ञान' आज आत्मनिर्भर है, अपना भार संभालने में स्वयं पूर्ण समर्थ है। क्या आज कोई बता सकता है? विश्व का कोई भी मासिक पत्र जो कि विशुद्ध आध्यात्मिक हो, अपने हितैषियों और पाठकों के सहयोग से बिना विज्ञापन लिए एक वर्ष में ही आत्मनिर्भर हो गया हो ? इससे अधिक अपेक्षा धर्मप्रेमी जनता से और की ही क्या जा सकती है ? – बिखरे मोती, पृष्ठ – १३०

२२. अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलते हुए सुसमय की प्रतीक्षा करते रहने के अतिरिक्त शांतिप्रिय आत्मार्थियों के लिए कोई उपायान्तर नहीं है।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १३२

२३. हमारी सुव्यवस्थित रीति नीति यह है कि पूज्य गुरुदेवश्री और उनके द्वारा बताये गये जिनागम के रहस्य एवं तत्त्वज्ञान को हम किसी भी कीमत पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। इसीप्रकार गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के बाद सोनगढ़ में समागत विकृतियों का समर्थन भी हम किसी भी कीमत पर नहीं कर सकते हैं। न हमने आज तक उनका समर्थन किया है और न कभी करेंगे ही।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १३८

२४. आगम के सम्मान एवं सामाजिक एकता की अनदेखी करनेवाले लोग जब घर फूँक तमाशा देखने पर उतारू हो जाते हैं तो अड़ोसी-पड़ोसी भी उस आग में स्वार्थ की रोटियाँ सेकने लगते हैं।

केवल व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि के लिए मौके की तलाश में बैठे असामाजिक तत्त्व जब उस आग को बुझाने के बहाने पानी के नाम पर जलते हुए सामाजिक ढांचे पर पेट्रोल डालने लगते हैं, तब समझदार लोगों के पास आत्मशुद्धि के लिए प्रभु से प्रार्थना एवं आत्माराधना के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं रह जाता है।

समाज के प्रबुद्धवर्ग का कार्य गहराई में जाकर

वस्तुस्थिति का गहरा अध्ययन करके यथासाध्य सम्यक् मार्गदर्शन करना है, पर जब प्रबुद्धवर्ग भी अपने इस उत्तरदायित्व से विमुख होने लगे और समाज में उत्तेजना फैलाने का घृणित कार्य करने लगे तो समझना चाहिए कि अब समाज के बुरे दिन आनेवाले हैं। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १४६

२५. बहुत भाई कहते हैं कि हमारे साथियों को त्याग-पत्र नहीं देना चाहिए था, हमें अदालत में जाना चाहिए था, सत्याग्रह करना चाहिए था। पर भाई साहब ! हमने अपना जीवन अध्यात्म के लिए समर्पित किया है, झगड़ा-झंझटों के लिए नहीं।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १५०

२६. बिना सोचे-समझे कुछ भी लिखते-बोलते रहने से दिगम्बर समाज की कितनी हानी है ? – क्या इसकी कल्पना भी उन्हें नहीं है ?

इस नाजुक स्थिति का लाभ उठाकर कुछ लोग पावन जिनवाणी को मन्दिरों से हटाने एवं जलप्रवाह करने की बातें करने लगे हैं, इसके लिए समाज को उकसाने भी लगे हैं। पहले भी इसप्रकार के प्रयास किए गए थे, पर वे सफल नहीं हुए, आगे भी इसप्रकार के कार्यों का यही हाल होनेवाला है।

क्या समयसार और मोक्षमार्गप्रकाशक को मात्र इसी आधार पर बहिष्कृत किया जा सकता है कि सोनगढ़ या जयपुर से प्रकाशित हुए हैं ? क्या इसमें आचार्य कुन्दकुन्द और पण्डित टोडरमलजी का अपमान नहीं होगा ? कल तक जो जिनवाणी थी, मन्दिरों में पढ़ी ही नहीं, पूजी जाती थी, क्या वह कुछ अविवेकियों के अविवेकपूर्ण कार्यों से आज तिरस्कार योग्य हो गई ? शास्त्रों का तिरस्कार कर नरक-निगोद जाने का महापाप किसी के बहकाने से धर्मभीरू समाज कभी करनेवाली नहीं है। 'धर्म के दशलक्षण' एवं 'परमभावप्रकाशक नयचक्र' जैसी सर्वमान्य कृतियाँ, जिनकी प्रशंसा मुनिराजों ने भी की है, विरोधी विद्वानों ने भी दिल खोलकर की है, जो आज जन-जन की वस्तु बन गई हैं, उन्हें निकाल पाना क्या आज किसी के वश की बात है?

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १५४

२७. हमारे पवित्र हृदय से किए गए इस अनुरोध को सम्पूर्ण समाज पवित्र हृदय से ही ग्रहण करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है; फिर भी यदि कुछ हुआ तो हमारे पास एक ही रास्ता शेष रह जाता है कि हम महात्मा गांधी के बताये रास्ते पर चलकर

आत्मशुद्धि के लिए सामूहिक उपवास करें, गाँव-गाँव में शान्ति के लिए प्रार्थनाएँ करें।

मुझे विश्वास है कि सच्चे हृदय से की गई हमारी प्रार्थनाएँ एवं आत्मशुद्धि के लिए किए गए हमारे सामूहिक उपवास व्यर्थ न जाएंगे। आत्मशुद्धि की कमी के कारण सच्चे हृदय से भी दी गई आवाज में वह शक्ति नहीं होती कि जिसे सभी लोग सुन सकें, स्वीकार कर सकें। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १५६

२८. यदि कुछ लोगों पर हमारे इस पवित्र आह्वान का असर न भी पड़े, तब भी दुष्काल में हमारी प्रार्थनाएँ और उपवास हमारे चित्त को शान्त रखेंगे ही, जिससे प्रतिक्रिया में होनेवाली प्रतिहिंसा से तो हम बचे ही रहेंगे।

दो-चार शास्त्रों के जलाने या पानी में बहाने से हम समाप्त नहीं हो जावेंगे, हम उसके बदले में उनकी पुस्तकों को जलाने के स्थान पर हजारों प्रतियाँ और अधिक छपाने के प्रयास में लगेंगे।

यदि जिनवाणी के जलप्रवाह से हम अपने बन्धुओं को विरत करना चाहते हैं तो मात्र इस भावना से ही कि वे इस पाप के फल से बचे रहें; क्योंकि जिनवाणी तो हम और भी छपा लेंगे पर

हमारे ही साधर्मी भाइयों को जो फल भोगना होगा, उसकी बात सोचकर हमारा हृदय काँप जाता है। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १५७

२९. प्रथम चरण में हम इस शान्तिप्रिय आन्दोलन में भाग लेनेवाले कम से कम दस हजार कार्यकर्ताओं के संकल्प पत्र प्राप्त करेंगे, जिसमें उन्हें यह संकल्प करना होगा कि हम देव-शास्त्र-गुरु की अवज्ञा न तो स्वयं करेंगे, न करायेंगे और न करनेवालों की अनुमोदना ही करेंगे। आगम के आधार बिना परम्परा विरुद्ध किए जानेवाले कार्यों, जिनवाणी की अवमानना एवं सामाजिक विघटन को रोकने के लिए शान्तिप्रिय, अहिंसात्मक मार्ग ही अपनायेंगे। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १६०

३०. भाई ! प्रतिकार का रास्ता उचित नहीं है, प्रतिकार का रास्ता विघटन की ओर जाता है।

यदि समाज को संगठित रखना है, जिनवाणी को जन-जन की वाणी बनाना है तो इस विनाशकारी रास्ते पर चलने की बात सोचना भी पाप है।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १६३

३१. हमारे पास इस शान्तिप्रिय आंदोलन के अतिरिक्त कोई रास्ता शेष नहीं रह गया है।

इस महापाप से स्वयं बचने और समाज को बचाने के लिए प्रार्थना और उपवास करने के अतिरिक्त हम कर भी क्या सकते हैं ?

भाई ! जिस समाज में हम रहते हैं, उस समाज में होनेवाले हर गलत कार्य के हम भी तो कुछ अंशों में जिम्मेदार हैं; भले ही वह कार्य हमने न किया हो, हमने न कराया हो, हमने उसकी अनुमोदना भी न की हो; पर हम उसे रोक नहीं सके – यह पीड़ा तो हमें भी है ही। समझ लीजिए हमारी यह प्रार्थनाएँ उस पीड़ा का ही परिणाम हैं, हमारे उपवास उक्त उत्तरदायित्व नहीं निभा पाने के प्रायश्चित हैं।

दुनिया चाहे बदले, चाहे न बदले; पर प्रार्थना में सम्मिलित होनेवालों को, उपवास करनेवालों को आत्मशान्ति तो प्राप्त होगी ही।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १६४

३२. आगम विरुद्ध कार्य और जिनवाणी की विराधना कहीं भी क्यों न हो; वह अनर्थक ही है, विघटनकारी ही सिद्ध होगी।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १६६

३३. जब आपके हृदय में इतनी गहरी वेदना है, इतना गहरा भाव है, उत्तेजना है तो एक बार एक

समय का भोजन छोड़कर णमोकार मन्त्र का पाठ करके पहले अपने चित्त को शान्त कीजिए।

अशान्त चित्त में लिया गया कोई भी निर्णय आत्मा के हित के लिए तो होता ही नहीं है, समाज के लिए भी उपयोगी नहीं होता है।

समाज टूटे नहीं और हमारी आत्मा की साधना, धर्म की साधना, जिनवाणी की आराधना शान्ति पूर्वक चलती रहे – ऐसा कोई मार्ग सोचेंगे।

जिनवाणी हमारे हृदयों में इतनी गहरी विराजमान है तो दुनिया की कौनसी ताकत है कि जो इसे हमारे हृदयों में से निकाल सके ?

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १६६

३४. समाज का स्नेह हम उनसे हाथ जोड़कर प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। हमें उनका स्नेह मिलेगा तो हम पूरे संकल्प के साथ उनके साथ रहेंगे और नहीं मिलेगा तो भी जिनवाणी की आराधना तो हम कभी छोड़ेंगे नहीं, वह तो हर हालत में हमारे खून का एक अंग बन चुकी है। इसलिए इसके स्वाध्याय का इंतजाम तो हम करेंगे ही।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १७१

३५. यह हमारी प्रतिज्ञा है और हमारे सारे

प्रवक्ताओं को निर्देश भी हैं कि कोई किसी की निन्दा न करे।

हमारी तरफ से किसी की निन्दा तो हम करते ही नहीं हैं। कोई बताए कि किस मुनि की हमने निन्दा की? हमारे प्रवचनों के कैसेट बनते हैं। पूरे साल भर में हम आठ महिने घूमते हैं। सब जगह कैसेट बनते हैं। हमारा साहित्य भी उपलब्ध है। हम किसी की व्यक्तिगत निन्दा करते हों तो कोई निकालकर बताये। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १७६

३६. किसी कण्टक को समाप्त करने की बात हम तो सोच भी नहीं सकते हैं। हम तो बहुत से बहुत आगे बढ़ेंगे तो यह सोच सकते हैं कि यदि समाज में शान्ति से रहकर हम अपनी धर्मसाधना, साहित्य की आराधना और स्वाध्याय नहीं कर सकते तो अलग बैठकर स्वाध्याय करें।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १७७

३७. मेरा तो कहना है कि गोली का जवाब गोली से देने की बात तो बहुत दूर, हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है। ऐसा पाप हमसे तो होगा नहीं। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १७६

३८. हृदय परिवर्तन का जो काम है, वह

समय-सापेक्ष होता है।

पहले हमें अपने हृदय की पवित्रता का परिचय देना पड़ता है; तब हम सामनेवाले से हृदय परिवर्तन की अपेक्षा रख सकते हैं। – बिखरे मोती, पृष्ठ – १८०

३६. हम पृथकता के दृष्टिकोण को लेकर नहीं चलना चाहते हैं। हम बरसों इंतजार करेंगे और जब बिल्कुल थक जाएंगे; तब कोई दूसरी बात सोचेंगे।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १८१

४०. दिगम्बर जैन समाज में ऐसा तो एक भी व्यक्ति नहीं होगा, जो शिथिलाचार का विरोधी न हो और सभी मुनिराजों में एक-सी श्रद्धा रखता हो। कोई किसी को मानता है तो कोई किसी को, एक-दूसरे की आलोचना भी कम नहीं करते, पर इसका यह तात्पर्य तो नहीं कि सभी मुनिविरोधी हैं।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १८८

४१. किसी से किसी प्रकार का मतभेद होना अलग बात है और लड़-झगड़कर समाज में फूट डालना एकदम अलग बात है।

इसप्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट है कि हम न तो किसी की निन्दा ही करते हैं और न ही लड़ाई-झगड़ा करना चाहते हैं, हम तो शान्ति से अपना

स्वाध्याय करना चाहते हैं और जिनवाणी के प्रसाद से जो कुछ भी प्राप्त हुआ है; उसे जन-जन तक पहुँचाना चाहते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द और उनकी वाणी में जिनकी आस्था है, वे सभी हमारे सच्चे साधर्मी भाई हैं, उनसे रंचमात्र भी वैर-विरोध हमें अभीष्ट नहीं है; अपितु हम तो उनका हार्दिक वात्सल्य चाहते हैं, कुन्दकुन्द के अनुयायियों की अर्थात् सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज की एकता हमें हृदय से अभीष्ट है, तदर्थ हम अपनी आस्थाओं को छोड़कर और सबकुछ समर्पित करने को तैयार हैं।

– बिखरे मोती, पृष्ठ – १८६

४२. यह एक सर्वमान्य सत्य है कि युवकों में जोश और प्रौढ़ों में होश की प्रधानता होती है।

युवकों में जितना जोश होता है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है; उतना अनुभव नहीं होता, होश नहीं होता। इसीप्रकार प्रौढ़ों में जितना अनुभव होता है, उतना जोश नहीं।

कोई भी कार्य सही और सफलता के साथ सम्पन्न करने के लिए जोश और होश दोनों की ही आवश्यकता होती है। अतः देश व समाज को दोनों

की ही आवश्यकता है। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं।

पूर्वजों के अनुभव से लाभ उठाना मानव जीवन की सार्थकता है और उनके अनुभवों की उपेक्षा करना मानव को प्राप्त सुविधा की अवहेलना है।

काम जोश से होता है, शक्ति से होता है – इस बात की उपेक्षा करना भी हितकर नहीं है।

सुनिश्चित योजना होश में अनुभव से बनती है और उसकी क्रियान्विति के लिए पूरी शक्ति और जोश की आवश्यकता होती है।

बिना जोश का होश शक्तिहीन मरियल घोड़े की सवारी है और बिना होश का जोश बिना लगाम के घोड़े जैसी सवारी है। दोनों ही सवार अपने गन्तव्य पर नहीं पहुँच पाएंगे। गन्तव्य पर पहुँचने के लिए शक्तिशाली जोशीले घोड़े और अनुभवी सवार का सही मार्गदर्शन बहुत जरूरी है।

समुचित नियोजन का उत्तरदायित्व होशवालों पर अधिक है; क्योंकि वे अनुभवी हैं। जोशवालों की जिम्मेदारी मात्र इतनी है कि वे अपने अनुभवी बुजुर्गों की तर्क-संगत बात सुनें, समझें व यथासम्भव ससन्मान कार्यरूप परिणत करें। –बिखरे मोती, पृष्ठ–१६१

४३. विद्वत्ता का अभिमान और त्याग का बड़प्पन भी एक सशक्त कारण है, जो विनम्र चित्त से समयसार की चर्चा सुनने-पढ़ने में अवरोध उत्पन्न करता है। समयसार की मूल विषयवस्तु सभी के गले उतरे – इसके लिए समाज का शान्त वातावरण अपेक्षित है।

आत्मार्थियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे शान्त सामाजिक वातावरण की प्रतीक्षा में अपने अमूल्य नरभव का एक पल भी व्यर्थ जाने दें, पर उनसे भी यह अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि सामाजिक वातावरण निर्मल करने में उनसे जो भी सम्भव हो, अवश्य करे।– बिखरे मोती, पृष्ठ – १६७

४४. मैं यह नहीं कहता कि जैनेतरों में जैनधर्म का प्रचार-प्रसार नहीं होना चाहिए। होना चाहिए, अवश्य होना चाहिए; पर पड़ौसियों को अमृत बाटने में हम इतने व्यस्त भी न हो जावें कि अपना घर ही न संभाल पावें।

यदि हमारा घर ही विकृत हो गया तो फिर पड़ोसियों की संभाल भी सम्भव न रहेगी; क्योंकि पड़ोसी कोरे उपदेशों से प्रभावित होनेवाले नहीं हैं, वे हमारा आचरण देखकर ही प्रभावित होते हैं। जब

हमारा घर ही शाकाहारी न रहेगा तो फिर हम किस मुँह से दूसरों को शाकाहारी बनने का उपदेश देंगे?

जब हमारी आगामी पीढ़ी के मुख में ही णमोकार मन्त्र न होगा तो हम किस आधार पर दूसरों के मुख में णमोकार मन्त्र डालेंगे ?

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – ११

४५. जो कुछ भी हो, यदि हमें सुख और शान्ति चाहिए तो धर्म को अपने जीवन का अंग बनाना ही होगा।

विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं को भी नकारने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जिस टी. वी. और वी. सी. आर. के सहयोग से आप कुत्सित चित्र देखते हैं, उन्हीं के सहयोग से घर बैठे आध्यात्मिक प्रवचन भी देख-सुन सकते हैं; जिस टेपरेकार्डर पर अश्लील गीत सुनते हैं, उन्हीं पर आध्यात्मिक गीत भी सुने जा सकते हैं। आवश्यकता धर्म के मार्गदर्शन में दिशा परिवर्तन की है।

भाई ! विज्ञान की इस दौड़ को पीछे ढकेलना संभव नहीं है, इसकी आवश्यकता भी नहीं है; आवश्यकता इसके सदुपयोग की है, जो धर्म के मार्गदर्शन बिना संभव नहीं है।

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – २७

४६. निःस्वार्थभाव और पवित्र हृदय से सही दिशा में किया गया सतत प्रयास कभी असफल नहीं होता।

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – २६

४७. मलिन वस्तुओं को भी निर्मल कर देनेवाला गंगा का अत्यंत निर्मल जल भी जब घड़ों में कैद हो जाता है तो दूसरों को पवित्र कर देने की उसकी क्षमता तो समाप्त हो ही जाती है, वह स्वयं ही दूसरों के छू लेने मात्र से अपवित्र होने लगता है।

गंगा के पवित्र जल में बिना किसी भेदभाव के सभी नहाते हैं और अपने को पवित्र अनुभव करते हैं; परन्तु जब गंगा का जल लोग अपने घड़ों में भर लेते हैं तो वह गंगा का जल गंगा का जल न रहकर ब्राह्मण का जल, क्षत्रिय का जल, शूद्र का जल हो जाता है। यदि एक जाति वाले के घड़े को दूसरी जातिवाला छू ले तो लोग उस जल को अपवित्र मानने लगते हैं। कहते हैं – तूने मेरा पानी क्यों छू लिया ? वही गंगा का जल जो सब को पवित्र करता था, घड़ों में भर जाने से स्वयं अछूत हो गया। उसकी दूसरों को पवित्र करने की शक्ति तो समाप्त हो ही गई, वह स्वयं भी दूसरे के छू लेने मात्र से अपवित्र होने लगा।

इसप्रकार सबको पावन कर देनेवाला यह जिनवाणी रूप गंगा का जल जब सम्प्रदायों के घड़ों में भर जाता है तो उसमें वह क्षमता नहीं रहती कि दूसरों के चित्त को शांत कर दे; अपितु साम्प्रदायिक उपद्रवों का कारण बनने लगता है; अतः यही श्रेष्ठ है कि गंगाजल गंगा में ही रहे, उसे घड़ों में बन्द न किया जाय।

गंगा के ही किनारे रखे गंगाजल से भरे घड़े छूआछूत पैदा करते हैं तो क्या उपाय है इस बुराई से बचने का ?

भाई ! एक ही उपाय है कि उन घड़ों को फोड़ दिया जाय; क्योंकि पानी में तो कोई दोष है नहीं, वह तो वैसा का वैसा ही निर्मल है; दोष तो घड़ों में है। घड़ों के फूटने पर गंगा का पानी गंगा में ही मिल जायेगा, गंगा में मिलते ही वह वही पावनता प्राप्त कर लेगा, जो उसमें घड़ों में कैद होने के पहले विद्यमान थी।

सम्प्रदायों में विभक्त जैनत्व जो आज साम्प्रदायिक सडांध पैदा कर रहा है, कलह का कारण बन रहा है; यदि वह उन्मुक्त हो जावे तो अपनी पावनता को तो सहज उपलब्ध कर ही लेगा,

अपनी पवित्रता की शक्ति से जैन समाज को ही नहीं सम्पूर्ण दुनिया को प्रकाशित कर देगा, सुख-शांति का मार्ग प्रशस्त कर देगा।

हमने अपनी ही अज्ञानता से बहुत-सी दीवालें खड़ी कर ली हैं; जाति की दीवालें, भाषा की दीवालें, प्रान्त की दीवालें; चारों ओर दीवालें ही दीवालें हैं और ये दीवाले निरंतर ऊँची होती जा रही हैं। दीवाल को अंग्रेजी में वाल कहते हैं। आज हम इन वालों – दीवालों के बीच विभक्त हो गये हैं। कोई खण्डेलवाल है, कोई अग्रवाल है, कोई ओसवाल है; पर जैन कोई भी दिखाई नहीं देता। यदि हम इन वालों – दीवालों को गिरा दें और सभी जैनत्व के महासागर में समाहित हो जावें तो हम वीतराग वाणी को जन-जन तक पहुँचा सकते हैं और यह वीतराग वाणी जन-जन तक पहुँचकर सम्पूर्ण जगत को सुख-शांति का मार्ग दिखा सकती है।

अतः अब समय आ गया है कि हम साम्प्रदायिक बाडों में कैद न रहें, जाति, प्रान्त और भाषा की सीमाओं में सीमित न रहें। यदि हम अहिंसारूपी वीतरागी तत्त्वज्ञान को असीम जगत तक पहुँचाना चाहते हैं तो हमें इन छुद्र सीमाओं को

भेदकर इनसे बाहर आकर महावीर वाणी के सार को जन-जन तक पहुँचाने के महान कार्य में जी-जान से जुट जाना चाहिए। यही सन्मार्ग है और इसी में हम सबका हित निहित है।

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – १२२

४८. जब हम सम्पूर्ण जैन समाज की एकता के लिए श्वेताम्बर भाइयों के साथ प्रेमपूर्वक उठ-बैठ सकते हैं, मिलजुल कर काम कर सकते हैं, सब प्रकार से समायोजन कर सकते हैं; तब फिर दिगम्बर समाज की एकता के लिए क्यों नहीं प्रेमपूर्वक उठ-बैठ सकते हैं; क्यों नहीं मिलजुल कर काम कर सकते हैं ? सभीप्रकार का समायोजन भी क्यों नहीं कर सकते हैं ? जितना अंतर दिगम्बर-श्वेताम्बर मान्यताओं में है, उतना अंतर तो हम और आप में नहीं है न ?

एकबार ऊपरी मन से एकसाथ उठने-बैठने लगें तो फिर सहज वात्सल्य भी जागृत हो जायेगा। अनावश्यक दूरी व्यर्थ ही आशंकाएँ उत्पन्न करती हैं। दूरी समाप्त करने का एकमात्र उपाय सहजभाव से नजदीक आना ही है।

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – १३०

४९. सामाजिक एकता के लिए विशाल दृष्टिकोण से कार्य करना होगा और ऐसा समाधान खोजना होगा, जो संबंधित सभी व्यक्तियों को स्वीकार हो सके; अन्यथा एकता संभव नहीं हो सकती। समझौता का रास्ता अत्यंत आवश्यक और उपयोगी होते हुए भी सहज व सरल नहीं होता; उसमें हमारी बुद्धि, क्षमता, सामाजिक पकड़, धैर्य सभी कसौटी पर चढ़ जाते हैं। फिर भी यदि दोनों पक्ष एक-दूसरे की कठिनाइयाँ समझें और सच्चे दिल से रास्ता खोजें तो मार्ग मिलता ही है।

– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ – १३२

५०. विवेकी का कार्य तो यही है कि अपनी बात इसप्रकार रखे कि सुननेवाले के सम्मान को चोट भी न पहुँचे और सत्य उसके सामने आ जाये।

दूसरी बात यह भी तो है कि घंटो का उपदेश जिस बात को किसी के गले नहीं उतार सकता, वह बात प्रयोग द्वारा एक क्षण में स्वीकृत हो जाती है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – १२

५१. विवेकीजन यथासंभव संघर्ष को टालने में ही अपनी जीत समझते हैं, उलझने में नहीं।

ज्ञानी और अज्ञानी में यदि कभी संघर्ष हो तो

जीत सदा अज्ञानी की ही होती है; क्योंकि संघर्ष तो ज्ञान से नहीं, कषाय से चलता है। ज्ञानी की कषाय कमजोर होने से उसका संघर्ष का संकल्प शीघ्र क्षीण हो जाता है।

संघर्ष में उलझना ही ज्ञान की हार है। ज्ञान हारा तो ज्ञानी ही हारा। अतः संघर्ष करने में ही ज्ञानी हार गया। यदि अंतर में ज्ञान जीत गया तो फिर वह संघर्ष करेगा ही नहीं। तब अज्ञानी की चल जाने से बाहर में ज्ञानी हारा दिखाई देगा ही। वास्तव में ज्ञानी की हार ही उसकी सबसे बड़ी जीत है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – १६

५२. दूसरों के हृदय तक अपनी बात पहुँचाने में प्रस्तुतिकरण का एक अपना अलग महत्त्व है।

गलत प्रस्तुतिकरण सत्य बात को भी विकृत कर देता है। अतः वस्तु की सत्यता के समान ही प्रस्तुतिकरण का महत्त्व भी कम नहीं है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ४६

५३. जबतक सहज श्रद्धालु नारी जाति शिक्षित नहीं होगी, उसे ढोंगी साधुओं और धूर्त महात्माओं से बचाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ६२

५४. जगत में कोई खोटा सिक्का चलाए तो उसको रोकना अपने बस की बात नहीं है, पर अपनी तिजोरी में खोटा सिक्का न आ जाए, इसका ध्यान तो रखना ही पड़ता है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ६३

५५. किसी का भंडा फोड करना, यह तत्त्वज्ञान के प्रचार का सही रास्ता है भी नहीं। यह तो निषेधात्मक, नकारात्मक मार्ग है; यह रचनात्मक मार्ग नहीं है। रचनात्मक मार्ग तो सत्य का उद्घाटन है न कि असत्य का भंडाफोड़। सत्य का उद्घाटन सत्य को समझना ही है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ६४

५६. जब आदमी स्वयं किसी बड़े धोखे से बच जाता है तो उसे अपने से अधिक चिन्ता उन लोगों को बचाने की हो जाती है, जो अभी भी उसीप्रकार के धोखे में फंसे हुए हैं। उन लोगों के बचाने के भाव के साथ-साथ एक भाव और भी उसके भीतर काम करता है। वह यह कि देखो ! धोखेबाज लोग धोखे के जरिए कैसे-कैसे ऐश-आराम कर रहे हैं, महात्मा बने बैठे हैं। स्वयं ठगे जाने से एक प्रकार का द्वेष, घृणा उनके प्रति उसके हृदय में उत्पन्न हो जाती है और जब उसे उनका वह ढोंग-पाखण्ड रोकना

अपनी शक्ति के बाहर दिखाई देता है तो उसकी उद्विग्नता और भी अधिक बढ़ जाती है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ६६

५७. साधुता को सहज प्रगट होने देना चाहिए। भावुकता में, वर्तमान परिणामों के भरोसे ही महानतम पद को स्वीकार कर लेना और बाद में शिथिल हो जाना, साधुता के साथ अन्याय है। उसकी बदनामी का कारण हो सकता है।

सच्चा साधु होना सिद्ध होने जैसा गौरव है। इस गरिमायुक्त महान् पद के साथ खिलवाड़ करना अपने जीवन और जगत के साथ खिलवाड़ करना है। – सत्य की खोज, पृष्ठ – ७३

५८. मैं चारित्र का नहीं, चारित्र के नाम पर पनपनेवाले पाखंड का विरोध करता हूँ। विरोध भी कहाँ करता हूँ ? किससे किया विरोध ? मैं तो सिर्फ़ धर्म के नाम पर चलनेवाले थोथे क्रियाकांड को धर्म नहीं मानता हूँ। मैं किसी का विरोध नहीं करता, मुझे किसी के विरोध से क्या प्रयोजन ? हमें विरोध में नहीं अविरोध में जाना है। धर्म अविरोध का नाम है, विरोध का नहीं। – सत्य की खोज, पृष्ठ – ८५

५९. प्रथम तो वे स्वयं तत्त्व की बातों से दूर रहते

हैं और प्रसंगवश सुनना पड़े तो ऐसे सुनते हैं जैसे एरण्डी का तेल पीकर बैठे हों, प्रसन्न चित्त से नहीं सुनते। जबतक कोई भी व्यक्ति ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की बात प्रीतिपूर्वक प्रसन्नचित्त से नहीं सुनेगा; तबतक उनकी समझ में आना संभव नहीं है। ऐसे लोग सुनते समय या तो रस लेंगे ही नहीं, लेंगे तो उदाहरणों में रस लेंगे या फिर अपनी मात्र प्रशंसा को सुनना चाहेंगे। उनकी चर्चा निकले, प्रशंसा हो तो गद्गद् हो जावेंगे; पर तत्त्वचर्चा उनके हृदय को गुदगुदाती नहीं।

कितनी ही महत्त्वपूर्ण तत्त्वचर्चा निकले, जो उन्होंने कभी सुनी भी न हो; पर अपनी पण्डिताई के गर्व में उसके प्रति प्रसन्नता व्यक्त नहीं करेंगे। पर यदि कोई दानी एक लाख रूपये के दान की घोषणा करे तो तालियाँ पीटने लगेंगे। अतः जबतक अंतर में सच्ची तत्त्वजिज्ञासा न जगे, किसी को मार-मारकर मुल्ला नहीं बनाया जा सकता।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – १००

६०. विघ्न उत्पन्न करनेवाले व्यक्तियों का उद्देश्य भी यही होता है कि कार्यकर्ताओं का उत्साह ठण्डा पड़े। – सत्य की खोज, पृष्ठ – ११४

६१. मदिर छोड़ने की बात नहीं है भाई ! यह सब क्षणिक उत्तेजना है। समय पर सब शांत हो जाएगा। खून का धब्बा खून से नहीं धुलता – उत्तेजना, उत्तेजना से शांत नहीं होती। हमें शांत रहना चाहिए, समय सबकुछ ठीक कर लेगा।

क्या नहीं लड़ना कायरता है और लड़ना वीरता? यदि वीरता झगड़ालुपन का ही नाम है और शांतिप्रियता का नाम कायरता है तो मैं कायर ही भला; ऐसी वीरता मुझे नहीं चाहिए। तत्त्व का प्रचार लड़कर नहीं किया जा सकता।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ११५

६२. सत्य इतना कमजोर नहीं होता कि दो-चार कार्यक्रम अस्त-व्यस्त होने से नष्ट हो जाए, छिप जाए।

संगठन से सत्य बहुत मजबूत होता है। संगठन जितनी जल्दी टूटता है, उतनी जल्दी सत्य नहीं।

सत्य टूटता ही नहीं, वह तो अटूट होता है।

मैं सत्य का उद्‌घाटन भी करूँगा और संगठन भी कायम रखूँगा।

मेरे द्वारा न सत्य की कीमत पर संगठन होगा और न संगठन की कीमत पर सत्य ही छोड़ा जाएगा।

धर्म के लिए सत्य जरूरी है और समाज के लिए संगठन। अतः धार्मिक समाज का काम है कि वह सत्य का आश्रय ले और संगठन को भी बनाए रखे।

विघटन समाज को समाप्त कर देता है और असत्य धर्म को। दोनों की ही सुरक्षा आवश्यक है।

मुझे ऐसे साथियों की आवश्यकता नहीं जो उतावले हों। सत्य का रास्ता इतना सस्ता नहीं।

मैं सक्रियता के लिए सक्रियता में विश्वास नहीं रखता। कार्य के लिए जो सक्रियता आवश्यक है, वह मेरी दृष्टि में उपादेय है, विधेय भी है – पर मात्र साथियों को बांधे रखने के लिए आवश्यक-अनावश्यक कुछ न कुछ करते रहना मेरी प्रकृति के अनुकूल नहीं है।

जो मात्र बाहरी सक्रियता से ही बंधते हैं, उन्हें बांधने से भी क्या होगा ? जो तत्त्व से बंधेगा, वहीं वास्तविक साथी होगा। तत्त्वदृष्टि की एकरूपता ही वास्तविक वात्सल्य उत्पन्न करती है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – ११८

६३. धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि करनेवाले लोग तो पग-पग पर

मिलेंगे, किन्तु निःस्वार्थभाव से धार्मिक एवं सामाजिक कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ता समाज में बहुत कम मिलते हैं। यही कारण है कि 'दान की गाय के दाँत नहीं होते' की कहावत के अनुसार धार्मिक और सामाजिक कार्य प्रायः सब जगह ऐसे ही चलते हैं।

दो चार दिन के उत्सव में दौड़-दौड़कर काम करना अलग बात है और किसी भी धार्मिक व सामाजिक कार्य को सदैव नियमितरूप से निभाना अलग बात। यही कारण है कि सर्वत्र मंदिरों में चलनेवाले शास्त्र-प्रवचन आदि धार्मिक महत्त्व के दैनिक कार्यक्रम बहुत से मंदिरों में तो चलते ही नहीं, जिनमें चलते भी हैं, वे भी नाममात्र के ही चलते हैं। – सत्य की खोज, पृष्ठ – १२६

६४. वस्तुतः होता तो यह है कि दबाने से सत्य अपनी शक्ति और संतुलित तैयारी के साथ तेजी से उभरता है; इसलिए तो कहा जाता है कि विरोध प्रचार की कुंजी है।

वस्तुतः विरोध से होता यह है कि वह बात विरोधियों के माध्यम से उन लोगों तक भी पहुँच जाती है; जिनके पास प्रचारकों के माध्यम से

पहुँचना संभव नहीं होता; क्योंकि जहाँ प्रचारकों के प्रवेश व पहुँच नहीं होती, वहाँ विरोधियों की होती हैं। – सत्य की खोज, पृष्ठ – १३८

६५. सत्य की प्राप्ति और सत्य का प्रचार दो अलग-अलग चीजें हैं। सत्य की प्राप्ति के लिए समस्त जगत से कटकर रहना आवश्यक है। इसके विपरीत सत्य के प्रचार के लिए जन-सम्पर्क जरूरी है।

सत्य की प्राप्ति व्यक्तिगत क्रिया है और सत्य का प्रचार सामाजिक प्रक्रिया।

सत्य की प्राप्ति के लिए अपने में सिमटना जरूरी है और सत्य के प्रचार के लिए जन-जन तक पहुँचना।

साधक की भूमिका और व्यक्तित्व द्वैध होते हैं। जहाँ एक ओर वे आत्मतत्त्व की प्राप्ति और तल्लीनता के लिए अन्तरोन्मुखी वृत्तिवाले होते हैं, वही प्राप्त सत्य को जन-जन तक पहुँचाने के विकल्प से भी वे अलिप्त नहीं रह पाते। उनके व्यक्तित्व की यह द्विविधता जनसामान्य की समझ में सहज नहीं आ पाती। यही कारण है कि कभी-कभी वे उनके प्रति शंकाशील हो उठते हैं।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – १४२

६६. मेरे द्वारा न सत्य की कीमत पर संगठन होगा न संगठन की कीमत पर सत्य ही छोड़ा जायेगा। धर्म के लिए सत्य जरूरी है और समाज के लिए संगठन। – सत्य की खोज, पृष्ठ – १४८

६७. जब भी क्रांति की लहर उठती है तो उसका सहज प्रतिरोध होता है; ज्यों-ज्यों उसका प्रतिरोध होता है, त्यों-त्यों उसमें और भी तेजी आती जाती है तथा एक समय ऐसा आता है कि वह तूफान का रूप धारण कर लेती है।

क्रांति में अच्छाइयों के साथ-साथ कुछ अनिवार्य बुराइयाँ भी होती है; क्योंकि क्रांति की लहर में अच्छे-बुरे सभी शामिल हो जाते हैं।

क्रांति के तूफान के वेग में बहे बहुत से अनगढ लोग भी प्रवक्ता बन जाते हैं, उनमें जोश तो बहुत होता है, पर होश कम। इसकारण अनेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – १६०

६८. स्वयं शांत रहनेवालों की शांति को भंग कौन कर सकता है ? कोई हमारी शांति भंग कर दे, तब जानें ? तुम स्वयं अंदर से अशांत हो रहे हो और स्वयंकृत अशान्ति के दोष को दूसरे के माथे मंढना

चाहते हो, ऐसी अनीति अध्यात्म में तो संभव है नहीं।

अंतर से शांत रहनेवालों की शांति को भंग करने की शक्ति तो किसी में है ही नहीं। सारा लोक भी उलट जाए तो भी उसकी शाति में भंग नहीं पड़ सकता। – सत्य की खोज, पृष्ठ – १७६

६९. उत्तेजनात्मक हथकण्डों की उम्र बहुत कम होती है। उत्तेजना में आदमी को अनंत प्रयत्नों के बाद भी बहुत देर तक रखा नहीं जा सकता है। जिसप्रकार पानी को बहुत देर तक गर्म रखा नहीं जा सकता है, वह निरंतर शीतलता की ओर दौडता रहता है, यदि उसे अग्नि का संयोग देते रहकर निरंतर गर्म रखने का प्रयास किया गया तो वह रहेगा ही नहीं, समाप्त हो जावेगा, भाप बनकर उड़ जावेगा।

समाज को शांत रखने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं, पर उत्तेजित रखने के लिए निरंतर प्रयास चाहिए। निरंतर के प्रयासों से समाज को उत्तेजित रख पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है तथा यदि रखने का प्रयास किया गया तो अनेक समस्यायें उठ खडी होंगी, जिनसे समाज को बचाना सम्भव न होगा। – सत्य की खोज, पृष्ठ – २१६

७०. असफलता के समान सफलता का पचा पाना भी हर एक का काम नहीं है। जहाँ असफलता व्यक्ति को, समाज को हताश, निराश, उदास कर देती है, उत्साह को भंग कर देती है; वहीं सफलता भी संतुलन को कायम नहीं रहने देती। वह अहंकार पुष्ट करती है, विजय के प्रदर्शन को प्रोत्साहित करती है। कभी-कभी तो विपक्ष का तिरस्कार करने को भी उकसाती नजर आती है।

पर सफलता असफलता की सब प्रतिक्रियाएँ जनसामान्य पर ही होती हैं, गंभीर व्यक्तित्ववाले महापुरुषों पर इनका कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता। वे दोनों ही स्थितियों में सन्तुलित रहते हैं, अडिग रहते हैं। – सत्य की खोज, पृष्ठ – २३३

७१. कौन किसका विरोधी है ? कोई किसी का शाश्वत विरोधी और मित्र नहीं होता। जो आज विरोधी लगता है, कल वही मित्र हो जाता है। जो मित्र है, उसे विरोधी होते क्या देर लगती है ? यह सब तो राग–द्वेष का खेल है, मिथ्यात्व की महिमा है; वैसे तो सभी आत्मा भगवानस्वरूप हैं।

यह क्यों कहते हो कि विरोधी कमजोर हो गए हैं, यह कहो न कि उनका विरोध कमजोर हो गया

है, अतः अब वे हमारे मित्र बन रहे हैं। हमें विरोधियों को नहीं, विरोध को मिटाना है। जब विरोध मिट जावेगा तो विरोधी ही मित्र बन जावेंगे। यह तो हमारा हल्कापन है, जो इस तरह सोचते हैं कि विरोधी कमजोर हो गये हैं।

झगड़े-टंटे नहीं होने से या कम हो जाने से आत्मार्थियों को सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि वे अब निर्विघ्नरूप से आत्मसाधना और तत्त्वाभ्यास कर सकते हैं, तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ भी निर्विघ्न चल सकती हैं।

सब को प्रेम से गले लगाने में ही सच्ची विजय है। विरोधियों का बिखर जाना कोई विजय ही नहीं है, यह तो नकारात्मक पहलू है। विरोध का समाप्त हो जाना भी पूरी विजय नहीं है; अपितु सबका सत्य के प्रति, तत्त्व के प्रति प्रेम हो जाना ही सच्ची विजय होगी। – सत्य की खोज, पृष्ठ – २३५

७२. तत्त्व के प्रति प्रेम होने में आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ सामाजिक लाभ भी है ही। समाज में एकता स्थापित हो जाना, कोई वैर विरोध नहीं रहना ही सच्चा सामाजिक लाभ है।

यदि तुम सच्चे आत्मार्थी हो और इतने दिनों

में यदि शास्त्र से कुछ सीखा है तो इसप्रकार की कोई बात नहीं होनी चाहिए, जो समाज के ठण्डे वातावरण को फिर गर्म करदे, विषाक्त बनादे। खुशियाँ ही मनाना है तो इसप्रकार मनाओ कि जिससे अभी तक हमसे दूर रहे लोग भी हमारे समीप आवें, समीप आने में संकोच न करें।

आवश्यकता तो इस बात की है कि हम खुशियाँ मनाने के चक्कर में कही अपने ध्येय से विचलित न हो जावें, भटक न जावें। आध्यात्मिक शांति को, सामाजिक शांति को प्राप्त करने के मार्ग का यह एक पड़ाव ही है। अभी गंतव्य नहीं आ गया है। कहीं तुम पड़ाव को ही गंतव्य तो नहीं समझ रहे हो ?

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २३६

७३. क्रांति का वास्तविक लाभ तो शांतिकाल में ही प्राप्त होता है। क्रांति में तो एक उत्तेजना रहती है। उसमें कुछ सोचने का, समझने का अवसर ही कहाँ प्राप्त होता है। क्रांति तो एक आँधी है, जो धूल उड़ाती आती है और सड़ी-गली पुरानी व्यवस्था उखाड़ती-पछाड़ती चली जाती है। नई सही व्यवस्था तो शांतिकाल में ही जमती है।

यदि क्रांति से सच्चा लाभ लेना है, तो क्रांति

के बाद सहज प्राप्त होनेवाले शांतिकाल का सही उपयोग कर लेना ही बुद्धिमानी है। क्रांति में हृदय-पक्ष की प्रधानता रहती है, भावना-पक्ष प्रधान रहता है, पर शांतिकाल में बुद्धि की परीक्षा की घड़ी आती है। क्रांति विध्वंस करती है और शांति निर्माण। अभी तो गलत परम्पराओं का विध्वंस ही हुआ है। अब सही परम्पराओं का निर्माण करने का काल है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २३७

७४. हमें विरोधियों को नहीं, विरोध समाप्त करना है। अरे भाई ! अज्ञान के कारण जो अभी तक तत्त्व का – सत्य का विरोध करते थे, वे सब भूले-भटके हमारे भाई ही तो हैं। आज यदि उन्हें समझ आ रही है, उनका भ्रम भंग हो गया है, तो हमें गले लगाकर उनका स्वागत करना चाहिए। हम भी तो एक दिन भ्रम में थे।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २४१

७५. जिस सामाजिक एकता के लिए हम वर्षों प्रयत्नशील रहे, जिसके लिए हमने पंचायत गठित की, प्रजातान्त्रिक पद्धति से उसके चुनाव कराये; पर प्राप्त नहीं कर पाये और अधिक दल-दल में उलझते गये, पार्टी बन्दियाँ खड़ी हो गई, ग्रुप बन

गये। इसके लिए हम धर्म निरपेक्ष बने, पर एकता हाथ न लगी। धर्मनिरपेक्ष बनने से हम धर्म से तो दूर हो गये, पर उसकी कीमत पर भी एकता नहीं ला सके। पर आज विवेक ने धर्म के मर्म को कायम रखकर ही नहीं, प्रस्तुत करके भी एकता स्थापित कर दी – यह कोई साधारण बात नहीं है।

एक दिन विवेक ने कहा था – धर्म के नाम पर न तो मैं समाज को विघटित होते देख सकता हूँ और न मुझ से धर्म की कीमत पर संगठन ही होगा। मैं धर्म को कायम रखकर समाज को संगठित करूँगा और समाज को संगठित रखकर धर्म को उसके सामने प्रस्तुत करूँगा – यह मेरा संकल्प है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २४३

७६. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए शांति और प्रेम का रास्ता यद्यपि लम्बा रास्ता है, इसमें प्रतिद्वन्दी को नहीं, उसके हृदय को जीतना पड़ता है, जीतकर उसे समाप्त नहीं किया जाता, अपितु अपना बनाया जाता है; तथापि टिकाउ और वास्तविक सफलता प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता यही है। इसमें असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति में तो इतना

धैर्य होता ही नहीं कि वह इतनी प्रतीक्षा कर सके – यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों द्वारा महान कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २४७

७७. संगठन के लिए एक ऐसा व्यक्तित्व चाहिए जो सबको साथ लेकर चल सके। और जिसके व्यक्तित्व पर लोग संगठित हो सकें। इसके बिना समाज को संगठित करने का हम जितना प्रयत्न करते हैं समाज उतना ही विघटित होता चला जाता है। हमने स्वतंत्रता की लड़ाई में इसका स्पष्ट अनुभव किया है। यदि गांधीजी का चुम्बकीय व्यक्तित्व हमारे सामने नहीं होता तो हम न तो संगठित ही हो पाते और न स्वतंत्रता की लड़ाई ही लड़ पाते। – सत्य की खोज, पृष्ठ – २४८

७८. इस भारत की मिट्टी में यह विशेषता है कि यहाँ बिना अध्यात्म के संगठन बन ही नहीं पाता है। यदि गांधीजी के जीवन में अध्यात्म न होता तो हो सकता है वे भी देश को संगठित न कर पाते। गांधीजी स्वयं सत्य को ईश्वर मानकर चलते थे और अहिंसा को उसकी प्राप्ति का उपाय मानते थे। उन्होंने सत्य को साध्य के रूप में अपनाया था; तभी

उन्हें देश को संगठित करने में सफलता प्राप्त हुई।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २४६

७६. भाई ! यह धर्म का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि लोग उसके नाम पर लड़ते हैं। धर्म तो कभी लड़ना नहीं सिखाता, पर लोग अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु धर्म के नाम पर लड़ते हैं। लड़ाती कषाय है, स्वार्थ है; और बदनाम धर्म होता है। धर्म लड़ने का नाम नहीं, नहीं लड़ने का नाम है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २५०

८०. सामाजिक संगठन और शांति बनाए रखना और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त प्रगतिशील समाज की स्थापना ही तो इस बहुमूल्य नरभव की सार्थकता है; इस मानव जीवन में तो आध्यात्मिक सत्य को खोजकर, पाकर आत्मिक शांति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करना ही वास्तविक कर्त्तव्य है।

– सत्य की खोज, पृष्ठ – २५२

८१. जो समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, समाज को संचालित करते हैं। यदि वे स्वयं शिथिलाचार का पोषण करते हैं तो फिर हम और आप क्या कर सकते हैं ? अतः मैं तो सभी आत्मार्थी बंधुओं से यही अनुरोध करता हूँ कि इसमें अपने को

उलझायें नहीं। जो जैसा करेगा, वह वैसा भरेगा; हम किस-किस को बचाते फिरेंगे ? हाँ, हम स्वयं वस्तु का सच्चा स्वरूप समझकर स्वयं को अवश्य बचा सकते हैं।

बाजार में यदि खोटा सिक्का चलता है तो उसे रोकने का काम सरकार का है। यदि हम उसे रोकने जावेंगे तो स्वयं उलझ सकते हैं। कहते हैं कि नकली सिक्का चलाने वालों के हाथ बहुत लम्बे होते हैं, वे लोग अत्यधिक संगठित होते हैं। वे बाधक बननेवालों को अपने रास्ते से हटाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। सरकार के हाथ उनके हाथों से भी लम्बे हैं। अतः सरकार ही चाहे तो उनके विरुद्ध कुछ कर सकती है।

इसीप्रकार समाज के सन्दर्भ में समझना चाहिए, शिथिलाचारी साधुओं के सन्दर्भ में भी समझना चाहिए। हाँ, एक बात अवश्य है कि भले ही हम नकली सिक्कों को बाजार में चलने से न रोक सके; पर इतनी सावधानी तो रखनी ही होगी कि वे नकली सिक्के हमारी जेब में न आ जाय। इसीप्रकार हम लोक में चलते हुए शिथिलाचार को भले ही न रोक पावें; पर हम स्वयं तो शिथिलाचारी

न हो जावें, हमारे चित्त में तो शिथिलाचार और शिथिलाचारी प्रवेश न कर जावें। इतनी सावधानी तो हमें रखनी ही होगी। – पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ– ५३

८२. इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि कहीं दूसरों के सुधार के चक्कर में हम अपना अहित न कर बैठे।

– पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ – ५४

८३. समझदारी इसी में है कि हम अपने कल्याण की ही सोचें। जो लोग सत्य समझना चाहते हों, विनयवंत हों, सरल हृदय हों, उनके अनुरोध पर जो कुछ सत्य जानते हों, अवश्य बताना, समझाना; पर जो लोग सुनना ही न चाहें, समझना ही न चाहें; उन्हें समझाने के विकल्प में समय व शक्ति व्यर्थ गंवाना ठीक नहीं है।

– पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ – ५५

८४. व्यक्ति विशेष की चर्चा होने पर वातावरण विक्षुब्ध हो जाता है और फिर मुनिधर्म का स्वरूप स्पष्ट करना भी संभव नहीं रहता है। अतः टीका-टिप्पणी और आलोचना-प्रत्यालोचना से पूरी तरह बचना चाहिए। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद में नहीं उलझना ही आत्मार्थ है, आत्मार्थिता की

सच्ची निशानी है। – पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ – ६२

८५. महान धर्मोत्सवों को मनोरंजन एवं मानप्रतिष्ठा का साधन न बनाकर वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार का साधन बनाया जाना चाहिए। इसी में हम सबका भला है, समाज का भी भला है। – पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ – ७३

८६. इस जगत में बुराइयों की तो कमी नहीं है, सर्वत्र कुछ न कुछ मिल ही जाती है; पर बुराइयों को न देखकर अच्छाइयों को देखने की आदत डालनी चाहिए। अच्छाइयों की चर्चा करने का अभ्यास करना चाहिए। अच्छाइयों की चर्चा करने से अच्छाइयाँ फैलती हैं और बुराइयों की चर्चा करने से बुराइयाँ फैलती हैं।

अतः यदि हम चाहते हैं कि जगत में अच्छाइयाँ फैले तो हमें अच्छाइयों को देखने-सुनने और सुनाने की आदत डालनी चाहिए।

चर्चा तो वही अपेक्षित होती है, जिससे कुछ अच्छा समझने को मिले, सीखने को मिले।

– पं. प्र. महोत्सव, पृष्ठ – ८७

८७. अन्तर की लगन चाहिए, लगनवाले को कुछ भी असंभव नहीं है।– गागर में सागर, पृष्ठ – ३७

८८. जिस प्रवचनकार के प्रवचन में आत्महित की प्रेरणा न हो, आत्मानुभव करने पर बल न हो; वह जिनवाणी का प्रवचनकार ही नहीं है। सीधी सरल भाषा में भगवान आत्मा की बात समझाना, भगवान आत्मा के दर्शन करने की प्रेरणा देना, अनुभव करने की प्रेरणा देना, आत्मा में ही समा जाने की प्रेरणा देना ही सच्चा प्रवचन है।

– गागर में सागर, पृष्ठ – ३७

८९. प्रवचन करने का प्रयोजन पांडित्य प्रदर्शन नहीं, अपितु आत्महितकारी तत्त्व की बात जन-जन तक पहुँचाना है। – गागर में सागर, पृष्ठ – ३८

९०. भाई ! हम सबका जीवन बहुत थोड़ा है। किसी का दश वर्ष अधिक होगा, किसी का दश वर्ष कम; पर इससे क्या अन्तर पड़ता है ? हम सभी को इस थोड़े से शेष जीवन का एक-एक क्षण बेशकीमती जानकर इसका सदुपयोग करना चाहिए।

जो बात स्वयं के हित की लगती है, वह बात सभी तक पहुँचे – इस पावन भावना से ही हम आत्मा की बात करते हैं।

सुनने मात्र से काम चलनेवाला नहीं है, इस

वीतरागी तत्त्व को जीवन में ढालना होगा, जीवन को वीतराग-विज्ञानमय बनाना होगा।

– गागर में सागर, पृष्ठ – ५२

९१. जो व्यक्ति अपनी वाणी का सदुपयोग करता है, समाज उसका सन्मान करता है और जो दुरुपयोग करता है, उसकी उपेक्षा या अपमान।

– गागर में सागर, पृष्ठ – ७८

९२. यदि हम सामाजिक स्तर पर वीतरागता विरोधी प्रवृत्तियों को नहीं हटा सकते तो इनसे अपने आपको तो बचा ही सकते हैं।

– मैं कौन हूँ, पृष्ठ – ५४

९३. दुःख के कारण भौतिक जगत में नहीं, मानसिक जगत में विद्यमान है। जबतक अन्तर में मोह-राग-द्वेष की ज्वाला जलती रहेगी, तबतक पूर्ण सुखी होना सम्भव नहीं है। मोह-राग-द्वेष की ज्वाला शान्त हो – इसके लिए धर्म, धार्मिक आस्था और धार्मिक आदर्शों से अनुप्रेरित जीवन का होना अत्यन्त आवश्यक है। – मैं कौन हूँ, पृष्ठ – ५६

९४. धार्मिक आदर्श भी ऐसे होना चाहिए कि जिनका संबंध जीवन की वास्तविकताओं से हो। जो आदर्श व्यावहारिक जीवन में सफलतापूर्वक न

उतर सकें, जिनका सफल प्रयोग दैनिक जीवन में संभव न हो, वे आदर्श कल्पनालोक के सुनहरे स्वप्न तो हो सकते हैं; किन्तु जीवन में उनकी उपयोगिता और उपादेयता संदिग्ध ही रहेगी।

– मैं कौन हूँ, पृष्ठ – ५६

६५. आज हमने मानव-मानव के बीच अनेक दीवारें खड़ी कर ली हैं। ये दीवारें प्राकृतिक न होकर हमारे ही द्वारा खड़ी की गई हैं। ये दीवारें रंग-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद, कुल-भेद, देश व प्रान्त-भेद आदि की हैं। यही कारण है कि आज सारे विश्व में एक तनाव का वातावरण है। एक देश दूसरे देश से शंकित है और एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से। यहाँ तक कि मानव-मानव की ही नहीं, एक प्राणी दूसरे प्राणी की इच्छा और आकांक्षाओं को अविश्वास की दृष्टि से देखता है; भले ही वे परस्पर एक दूसरे से पूर्णतः असंपृक्त ही क्यों न हों, पर एक दूसरे के लक्ष्य से एक विशेष प्रकार का तनाव लेकर जी रहे हैं। तनाव से सारे विश्व का वातावरण एक घुटन का वातावरण बन रहा है।

वास्तविक धर्म तो वह है जो इस तनाव व घुटन को समाप्त करें या कम करें। तनावों से वातावरण

विषाक्त बनता है और विषाक्त वातावरण मानसिक शान्ति भंग कर देता है। – मैं कौन हूँ, पृष्ठ – ६३

६६. धर्म को मात्र मानव से जोड़ना भी एक प्रकार की संकीर्णता है, वह प्राणीमात्र का धर्म है। 'मानवधर्म' शब्द भी पूर्ण उदारता का सूचक नहीं है, वह भी धर्म के क्षेत्र को मानवसमाज तक ही सीमित करता है; जबकि धर्म का सम्बन्ध समस्त प्राणी जगत से है; क्योंकि सभी प्राणी सुख और शान्ति से रहना चाहते हैं।

धर्म का सर्वोदय स्वरूप तबतक प्राप्त नहीं हो सकता, जबतक कि आग्रह समाप्त नहीं हो जाता; क्योंकि आग्रह विग्रह पैदा करता है, प्राणी को असहिष्णु बना देता है।

धर्म का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि उसके नाम पर रक्तपात हुए और वह भी उक्त रक्तपात के कारण विश्व में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। इसप्रकार जिस धर्मतत्त्व के प्रचार के लिए हिंसा अपनाई गई, वही हिंसा उसके ह्रास का कारण बनी। किसी का मन तलवार की धार से नहीं पलटा जा सकता। अज्ञान ज्ञान से कटता है, उसे हमने तलवार से काटने का यत्न किया। विश्व में

नास्तिकता के प्रचार में इसका बहुत बड़ा हाथ है।

– मैं कौन हूँ, पृष्ठ – ६४

६७. सम्प्रदाय में रहकर सम्प्रदाय के साथियों को सत्य समझाना सरल होने पर भी उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाना संभव नहीं है। पक्ष का व्यामोह भी कितना जटिल होता है। यह मार्ग सही नहीं है – यह स्वीकार करके भी इसे छोड़ने की कल्पना भी लोगों को आन्दोलित कर देती है। बाड़े का बंधन असह्य प्रतीत होने पर भी बाड़े की सीमा का उल्लंघन करने की कल्पना भी सामान्यजनों को कँपा देती है।

– आप कुछ भी कहो, पृष्ठ – ३६

६८. सामाजिक जीवन में विषमता रहते अहिंसा नहीं पनप सकती। अतः अहिंसा के सामाजिक प्रयोग के लिए जीवन में समन्वय-वृत्ति, सह-अस्तित्व की भावना एवं सहिष्णुता अति आवश्यक है। भगवान महावीर ने जनसाधारण में संभावित शारीरिक हिंसा को कम करने के लिए सह अस्तित्व, सहिष्णुता और समताभाव पर जोर दिया, तो वैचारिक हिंसा से बचने के लिए अनेकान्त का समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया।

– ती॰ भ॰ महावीर, पृष्ठ – ११

६६. भगवान महावीर ने जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया। वे योग्यता-मूलक समाज-व्यवस्था में विश्वास रखते थे; क्योंकि व्यक्ति की ऊँचाई का आधार उसकी योग्यता और आचार-विचार है, न कि जन्म। जन्म से ही छोटे बड़े का भेद करना भी हिंसात्मक आचरण है।

– ती॰ भ॰ महावीर, पृष्ठ – १२

१००. सहिष्णुता और समताभाव तबतक प्राप्त नहीं किया जा सकता, जबतक कि आग्रह समाप्त नहीं हो जाता; क्योंकि आग्रह विग्रह को जन्म देता है, प्राणी को असहिष्णु बना देता है। धार्मिक असहिष्णुता से भी विश्व में बहुत कलह और रक्तपात हुआ है, इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब धार्मिक आग्रह सहिष्णुता की सीमा को लांघ जाता है, तब-तब वह अपने प्रचार व प्रसार के लिए हिंसा का आश्रय लेने लगता है।

– ती॰ भ॰ महावीर, पृष्ठ – १२

१०१. संघर्ष अशांति का कारण है और उसमें हिंसा अनिवार्य है। हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म देती है। इसप्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा का कभी समाप्त न होनेवाला चक्र चलता रहता है।

यदि हम शांति से रहना चाहते हैं तो हमें दूसरों के अस्तित्व के प्रति सहनशील बनना होगा।

– ती॰ भ॰ महावीर, पृष्ठ – १३

१०२. आज के इस अशान्त जगत में अध्यात्म ही एक ऐसा दीपक है, जो भटकी हुई मानवसभ्यता को सन्मार्ग दिखा सकता है। अध्यात्म का जितना अधिक प्रचार-प्रसार होगा, सुख-शान्ति की सम्भावनाएँ भी उतनी ही अधिक प्रबल होंगी।

– आ. कुन्द॰ परमागम, पृष्ठ – ५४

१०३. आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का नियमित स्वाध्याय एवं विधिवत् पठन-पाठन न केवल आत्महित के लिए आवश्यक है; अपितु सामाजिक शांति और श्रमणसंस्कृति की सुरक्षा के लिए भी अत्यंत आवश्यक है; अन्यथा श्रावकों में समागत असदाचार और श्रमणों में समागत शिथिलाचार सामाजिक शांति को भंग कर ही रहे हैं; श्रमणसंस्कृति की दिगम्बर धारा भी छिन्न-भिन्न होती जा रही है।

यदि हम जिन-अध्यात्म की ज्योति जलाए रखना चाहते हैं, श्रावकों को सदाचारी बनाए रखना चाहते हैं, संतों को शिथिलाचार से बचाये रखना

चाहते हैं तो हमें कुन्दकुन्द को जन-जन तक पहुँचाना ही होगा, उनके साहित्य को जन-जन की वस्तु बनाना ही होगा।

– आ॰ कुन्द परमागम, पृष्ठ – ११८

१०४. यदि वस्तुतत्त्व की सही जानकारी नहीं है तो अनाप-शनाप बोलने से नहीं बोलना, चुप रहना हितकर है।

आज का युग समझौतावादी युग है। अति उत्साह में कुछ लोग वस्तुतत्त्व के संबंध में समझौते की बात करते हैं; किन्तु वस्तु के सत्य स्वरूप को समझने की आवश्यकता है, समझौते की नहीं। वस्तु के स्वरूप में समझौते की गुंजाइश भी कहाँ है और उसके सम्बन्ध में समझौता करनेवाले हम होते भी कौन हैं? समझौते में दोनों पक्षों को झुकना पड़ता है। समझौते का आधार सत्य नहीं, शक्ति होती है। समझौते में सत्यवादी की बात नहीं, शक्तिशाली की बात मानी जाती है। धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ – ८०

१०५. बाह्य विभूति भी जैनियों के पास जितनी दुनिया समझती है, उतनी नहीं है। दिखावा अधिक होने से दुनिया को ऐसा लगता है। यदि है भी तो सदाचाररूप जीवन के कारण है, सप्तव्यसनादि का

अभाव होने से सहज सम्पन्नता दिखाई देती है। जिस दिन जैनसमाज से सदाचार उठ जायेगा उस दिन उसकी भी वही दशा होगी जो व्यसनी समाज की होती है। धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ – १५०

१०६. कोई जीव हमसे क्षमा माँगे, चाहे नहीं माँगे; हमें क्षमा करे, चाहे नहीं करे; हम तो अपनी ओर से सबको क्षमा करते हैं और सबसे क्षमा माँगते हैं – इसप्रकार हम तो अब किसी के शत्रु नहीं रहे और न हमारी दृष्टि में कोई हमारा शत्रु रहा है। जगत हमें शत्रु मानो तो मानो, जानो तो जानो; हमें इससे क्या और हमारा दूसरे की मान्यता पर अधिकार भी क्या है? हम तो अपनी मान्यता सुधार कर अपने में जाते हैं; जगत की जगत जाने – ऐसी वीतराग परिणति का नाम ही सच्चे अर्थों में क्षमावाणी है। – धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ – १८१

१०७. पक्षव्यामोह से दूर रहकर विचार करने पर विवाद के लिए कोई स्थान नहीं रहता है। जिनवाणी का गहराई से अध्ययन नहीं करना ही तात्त्विक विवादों का मूल कारण है।

तात्त्विक विवादों से बचने का एकमात्र उपाय जिनवाणी का गहराई से स्वाध्याय करना ही है। न

केवल तात्त्विक विवादों के सुलझाने के लिए, अपितु आत्मकल्याण के लिए भी प्राथमिक स्थिति में जिनवाणी ही परमशरण है। –निमित्तोपादान, पृष्ठ–२३

१०८. **प्रश्न** – तो आखिर आप चाहते क्या है?

उत्तर – सम्पूर्ण जगत जितना बन सके जिनवाणी का अभ्यास करे; क्योंकि सच्चे सुख और शांति की मार्गदर्शक यह नित्यबोधक वीतरागवाणी ही है; जिनवाणी ही है। इस निकृष्ट काल में साक्षात् वीतरागी-सर्वज्ञ परमात्मा का तो विरह है; अतः उनकी दिव्यध्वनि के श्रवण का साक्षात् लाभ मिलना तो संभव नहीं है। सन्मार्गदर्शक सच्चे गुरुओं की भी विरलता ही समझो। हमारे परमसद्भाग्य से एकमात्र जिनवाणी ही है; जो सदा सर्वत्र, सभी को सहज उपलब्ध है। यदि हम बहानेबाजी करके उसकी भी उपेक्षा करेंगे तो समझ लेना कि चारगति और चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते कहीं ठिकाना न लगेगा।

धर्मपिता सर्वज्ञ परमात्मा के विरह में एक जिनवाणी माता ही शरण है। उसकी उपेक्षा हमें अनाथ बना देगी। आज तो उसकी उपासना ही मानों जिनभक्ति, गुरुभक्ति और श्रुतभक्ति है।

उपादान के रूप में निजात्मा और निमित्त के रूप में जिनवाणी ही आज हमारा सर्वस्व है।

निश्चय से जो कुछ भी हमारे पास है, उसे निजात्मा में और व्यवहार से जो कुछ भी बुद्धि, बल, समय और धन आदि हमारे पास हैं; उन्हें जिनवाणी माता की उपासना, अध्ययन, मनन, चिन्तन, संरक्षण, प्रकाशन, प्रचार व प्रसार में ही लगा देने में इस मानवजीवन एवं जैनकुल में उत्पन्न होने की सार्थकता है।

अतः विषय-कषाय, व्यापार-धन्धा और व्यर्थ के वादविवादों से समय निकालकर वीतरागवाणी का अध्ययन करो, मनन करो, चिन्तन करो; बन सके तो दूसरों को भी पढ़ाओं, पढ़ने की प्रेरणा दो, इसे जन-जन तक पहुँचाओ, घर-घर में बसाओ।

स्वयं न कर सको तो यह काम करनेवालों को सहयोग अवश्य करो। वह भी न कर सको तो कम से कम इस भले काम की अनुमोदना ही करो।

बुरी होनहार से यह भी संभव न हो तो कम से कम इसके विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ। इस काम में लगे लोगों की टाँग तो मत खींचो, इसके अध्ययन-मनन को निरर्थक तो मत बताओ। इसके

विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ।

यदि आप इस महान कार्य को नहीं कर सकते, करने के लिए लोगों को प्रेरणा नहीं दे सकते, तो कम से कम इस कार्य में लगे लोगों को निरुत्साहित तो मत करो, उनकी खिल्ली तो मत उड़ाओ। आपका इतना सहयोग ही हमें पर्याप्त होगा।

– प० प्र० नयचक्र, पृष्ठ – १८३

१०६. तुझे वस्तुस्वरूप जानना भी भार लगता है, उलझन लगती है। लड़ाई-झगड़े, धंधे-पानी एवं विषय-कषायों में तो दिन-रात रचा-पचा रहता है; वे तो भारभूत नहीं लगते, उनमें उलझते हुए तो उलझन भी नहीं लगती; किन्तु जब वस्तुस्वरूप समझाते हैं तो थोड़े से विस्तार में जाते ही घबड़ाने लगता है। इसमें तुझे समय, शक्ति एवं प्रगटज्ञान की बरबादी लगती है। इस समय शक्ति एवं क्षयोपशमज्ञान को बचाकर कहाँ लगाना चाहता है? यदि त्रिकाली ध्रुव में लगावें तो हमें कुछ भी नहीं कहना है, किन्तु यदि वहाँ न लगाकर अन्यत्र बरबाद करे तो उससे यही अच्छा है कि जो हम जिनवाणी की बात बता रहे हैं, उसे समझने में पूरी शक्ति लगा दे। – प० प्र० नयचक्र, पृष्ठ – २०८

११०. एकमात्र 'होना' अर्थात् 'अस्तित्व' ही एक ऐसी जाति है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण जगत में एकता स्थापित हो सकती है। –प.प्र. नयचक्र, पृष्ठ–२५३

१११. शत्रु और मित्र में समभाव रखनेवाले मुनिराज वर्द्धमान गिरि-कन्दराओं में वास करते थे। वस्तुतः न उनका कोई शत्रु ही रहा था और न कोई मित्र। मित्र और शत्रु राग-द्वेष की उपज हैं। जब उनके राग-द्वेष ही समाप्तप्रायः थे, तब शत्रु-मित्रों के रहने का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया था।

मित्र रागियों के होते हैं, और शत्रु द्वेषियों के – वीतरागियों का कौन मित्र और कौन शत्रु? कोई उनसे शत्रुता करो तो करो, मित्रता करो तो करो, उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती थी।

शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है। उनके लिए उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। अन्य लोग उन्हें अपना शत्रु मानो तो मानो, अपना मित्र मानो तो मानो; अब वे किसी के कुछ भी न रह गये थे। किसी का कुछ रहने में कुछ लगाव होता है, उन्हें जगत् से कोई लगाव ही न रहा था। – वी. भ. महावीर, पृष्ठ – १४

११२. बाह्य क्रियाकाण्ड और वेष के नाम पर

भोली जनता को प्रभावित कर लेना, 'धर्म खतरे में है–' का नारा देकर उत्तेजित कर देना – एक बात है और गहन तात्त्विक चर्चा एवं अनुत्तेजित प्रवचन-शैली से जगत में शान्त, आध्यात्मिक वातावरण पैदा करना – दूसरी बात।

– यु. कानजीस्वामी, पृष्ठ – ६६

११३. आज हमें ऐसे योग्य अध्यापकों की आवश्यकता है जो १. बालकों में वीतराग–विज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर सकें, २. उन्हें सामान्य तत्त्वज्ञान करा सकें तथा, ३. सदाचार से युक्त नैतिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित कर सकें।

– वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका, पृष्ठ – १

११४. भक्ति के नाम पर होने वाली नृत्य, गीत आदि रागवर्द्धक क्रियाओं का भक्ति में कोई स्थान नहीं है। – पं. टो. : व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व, पृष्ठ – १७७

११५. हम जैन हैं; अतः जैनशास्त्रों में जो लिखा है, उसे ही सत्य मानते हैं और उनकी ही आज्ञा में चलते हैं। ऐसा माननेवाले आज्ञानुसारी जैनाभास है। बिना परीक्षा किए एवं बिना हिताहित का विचार किए कोरी आज्ञाकारिता गुलाम मार्ग है।

– पं. टो. : व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व, पृष्ठ – १८८

११६. आजीविका, मान, बड़ाई आदि लौकिक प्रयोजन सिद्ध करने के लिए धर्म साधन करनेवाले व्यक्ति भी धर्म के मर्म को समझने में असमर्थ रहते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि तत्त्व की गहराई में न जाकर अपने लौकिक स्वार्थसिद्धि की ओर रहती है। धर्मात्मा के लौकिक कार्य सहज ही सधे तो सधें; पर उनके लक्ष्य से धर्म साधन करना ठीक नहीं है।

– पं॰ टो॰ : व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व, पृष्ठ – १८८

११७. क्या देव-शास्त्र-गुरु की रक्षा उनके स्वरूप को जाने बिना ही हो जावेगी? वे तो अपने स्वरूप में सदा सुरक्षित ही हैं, उन्हें हमारी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें अपनी सुरक्षा करनी हो तो उनके सही स्वरूप को समझें। इसमें ही हमारी और हमारे धर्म की सुरक्षा है। धर्म-रक्षा की बात करनेवालों को थोड़ा-बहुत ध्यान इस ओर भी देना चाहिए। –क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ – ६३

११८. चाहे कितना ही ईमानदार व्यवस्थापक क्यों न हों, व्यवस्थापक द्वारा की गई व्यवस्था कभी भी पूर्ण व्यवस्थित, सही व न्यायसंगत नहीं हो सकती; स्वयंचालित व्यवस्था ही पूर्ण व्यवस्थित, सही व न्यायसंगत होती है। – क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ – ६५

११६.गलतफहमियों से उत्पन्न आपसी समस्याओं को यदि हम आमने-सामने बैठकर निपटा लें तो व्यर्थ के संघर्षों से बहुत कुछ बच सकते हैं तथा विनाशक युद्धों को अहिंसात्मक प्रतियोगिताओं में बदलकर विश्व को विनाश से बचाए रख सकते हैं।

– गोम्मटेश्वर बाहुबली, पृष्ठ – १६

१२०. १६ अप्रेल १९९२ के जैन गजट में एक अत्यन्त भ्रामक समाचार छपा है, जिसमें लिखा गया है कि नागपुर पंचकल्याणक के अवसर पर डॉ॰ भारिल्ल ने आचार्य विद्यासागरजी का फोटो उतरवा दिया एवं 'होली खेलें मुनिराज' भजन बंद करवा दिया।

उक्त भजन हमें अत्यन्त प्रिय है, हमारे यहाँ से प्रकाशित भक्ति सरोवर में प्रकाशित है और मुमुक्षु समाज में निरन्तर बोला जाता है।

नागपुर परवार मन्दिर से साहित्य हटवाने वाले एवं 'कानजी पोपडम' जैसी पुस्तकें लिखने वाले आचार्य कुन्थुसागरजी के प्रति भी हमने मुख नहीं खोला तो फिर आचार्य विद्यासागरजी जैसे विद्यानुरागी महाराज के प्रति कुछ कहना व करना

हमें अभीष्ट कैसे हो सकता है?

चित्र हटवाना एवं भजन बंद करवाना दोनों ही बातें एकदम असत्य एवं उत्तेजना फैलानेवाली हैं। सम्पूर्ण समाज से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वह इसप्रकार के दुष्प्रचार से सावधान रहे एवं समस्त मुमुक्षु समाज से निवेदन है कि कोई कितना भी उत्तेजित क्यों न करे, हर स्थिति में पूर्ण शान्त रहे।

– वीतराग-विज्ञान, मई–१९९२ के कवर पृष्ठ

१२१. आज न तो युवकों की कमी है और न युवक संगठनों की। युवकों के संगठन तो बहुत हैं, पर इस समय समाज को ऐसे संगठन की आवश्यकता थी जो आग लगाने का नहीं, बुझाने का कार्य करे। प्रसन्नता है कि अ॰ भा॰ जैन युवा फैडरेशन समाज में आग बुझाने का कार्य कर रहा है, इसके सभी कार्य अद्वितीय हैं।

– जैनपथप्रदर्शक, १६ जून–१९८०

बन्धुओं ! क्या आप डॉ॰ भारिल्ल की इस रीति-नीति से सहमत हैं ? यदि हाँ, तो फिर इस रीति-नीति को जन-जन तक पहुँचाने में सहयोग दीजिये, इस पुस्तक को निःशुल्क वितरित कीजिये।

आपकी सूचना मिलने पर वितरक का नाम छपाकर पुस्तक आपको प्राप्त कराई जा सकती है।

– ब्र॰ यशपाल जैन, सम्पादक

लेखक के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१.	समयसार अनुशीलन भाग-१	२०.००
२.	समयसार अनुशीलन भाग-२	२०.००
३.	समयसार अनुशीलन भाग-३	२०.००
४.	समयसार अनुशीलन भाग-४	२०.००
५.	परमभाव प्रकाशक नयचक्र	१६.००
६.	चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००
७.	सूक्तिसुधा	१५.००
८.	बिखरे मोती	१२.००
९.	आत्मा ही है शरण	१५.००
१०.	सत्य की खोज	१२.००
११.	पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००
१२.	धर्म के दशलक्षण	१०.००
१३.	बारह भावना : एक अनुशीलन	८.००
१४.	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	८.००
१५.	आप कुछ भी कहो	७.००
१६.	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१२.००
१७.	गागर में सागर	७.००
१८.	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	६.००
१९.	आ. कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.००
२०.	क्रमबद्धपर्याय	२.००
२१.	युग पुरुष कानजी स्वामी	५.००
२२.	मैं कौन हूँ	४.००
२३.	अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	२.५०
२४.	निमित्तोपादान	३.५०
२५.	चैतन्य चमत्कार	२.००

नोट : गोम्मटेश्वर बाहुबली, ती. भ. महावीर, वीतरागी व्यक्तित्व भ. महावीर, बारह भावना, कुन्दकुन्द शतक, शुद्धात्मशतक, समयसार पद्यानुवाद, योगसार पद्यानुवाद, अनेकान्त और स्याद्वाद, शाकाहार, शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर, सार समयसार, बालबोध पाठमाला, वीतराग-विज्ञान पाठमाला, तत्वज्ञान पाठमाला, गोली का जवाब गाली से भी नहीं एवं अर्चना (पूजन संग्रह) आदि पुस्तकें भी उपलब्ध हैं।